आयुर्वेदिक सलाह : महामुनि महर्षि श्री गर्गाचार्य ऋषि

उच्च रक्तचाप (बीपी) नियंत्रित रखने के महत्वपूर्ण नियम

क्या आपका रक्तचाप अक्सर बढ़ा रहता है? क्या आप अपने हृदय, मस्तिष्क और किडनी को लंबे समय तक स्वस्थ रखना चाहते हैं? आइए मैं श्रीमती दिव्या रावत गर्ग उण्डू 'राज' आज उच्च रक्त चाप नियंत्रण पर केंद्रित लघु आलेख पेश कर रही हूं आशा है आपको पसंद आयेगा।

उच्च रक्तचाप को अक्सर साइलेंट किलर कहा जाता है, क्योंकि इसके शुरुआती चरण में सामान्यतः कोई स्पष्ट लक्षण दिखाई नहीं देते। यदि इसे नियंत्रित न किया जाए, तो यह हृदय रोग, स्ट्रोक, किडनी की बीमारी और आंखों की समस्याओं का जोखिम बढ़ा सकता है। सही भोजन, नियमित शारीरिक गतिविधि और स्वस्थ जीवनशैली अपनाकर इसे काफी हद तक नियंत्रित रखा जा सकता है। आइए जानें 11 सरल और प्रभावी नियम।

उच्च रक्त चाप नियंत्रणः महामुनि महर्षि श्री गर्गाचार्य ऋषि

1. नमक सीमित मात्रा में लें:

पूरे दिन में नमक का सेवन संतुलित रखें और ऊपर से अतिरिक्त नमक डालने की आदत छोड़ें।

2. संतुलित एवं प्राकृतिक भोजन करें:

हरी सब्जियां, मौसमी फल, दालें, साबुत अनाज और घर का ताजा भोजन अपने दैनिक आहार में शामिल करें।

3. स्वस्थ वजन बनाए रखें:

अतिरिक्त वजन कम करने से रक्तचाप नियंत्रित रखने में सहायता मिल सकती है।

4. नियमित शारीरिक गतिविधि करें:

प्रतिदिन कम से कम 30 मिनट तेज चाल से टहलें (Brisk Walk), योग करें या अपनी क्षमता के अनुसार व्यायाम करें।

5. नशीले पदार्थों से दूरी रखें:

धूम्रपान, तंबाकू और अत्यधिक शराब का सेवन रक्तचाप तथा हृदय स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

6. भरपूर और गुणवत्तापूर्ण नींद लें:

प्रतिदिन 7-8 घंटे की अच्छी एवं गहरी नींद लेने का प्रयास करें।

7. मानसिक तनाव नियंत्रित रखें:

ध्यान, योग, प्राणायाम, संगीत और सकारात्मक सोच तनाव कम करने में सहायक हो सकते हैं।

8. पर्याप्त पानी पिएं:

शरीर की आवश्यकता के अनुसार पर्याप्त मात्रा में स्वच्छ पानी पिएं और मीठे पेयों की अपेक्षा सादा पानी चुनें।

9. नियमित रक्तचाप की जांच करवाएं:

समय-समय पर ब्लड की जांच करवाएं और चिकित्सकीय सलाह का पालन करें।

10. दवाएं नियमित लें:

यदि डॉक्टर ने रक्तचाप की दवा लिखी है, तो उसे बिना चिकित्सकीय सलाह के बंद या कम न करें। साँसों पर नियंत्रण रख ब्लड ख्हद्दुह्द को जड़* से समाप्त किया जा सकता है।

रक्तचाप नियंत्रित रखने के कुछ अतिरिक्त स्वास्थ्य उपायः

फल और सब्जियां अधिक खाएं:

प्रतिदिन पर्याप्त मात्रा में हरी सब्जियां, मौसमी फल और फाइबर युक्त भोजन लें। यह स्वस्थ रक्तचाप बनाए रखने में सहायक हो सकता है।

पोटैशियम युक्त खाद्य पदार्थः

चिकित्सकीय सलाह के अनुसार केला, टमाटर, पालक, नारियल पानी और अन्य पोटैशियम युक्त खाद्य पदार्थों को भोजन में शामिल करें। (यदि किडनी की बीमारी हो, तो पहले डॉक्टर की सलाह अवश्य लें।)

मेवे और बीज सीमित मात्रा में लें:

बादाम, अखरोट, अलसी और तिल जैसे प्राकृतिक खाद्य पदार्थ लाभकारी हो सकते हैं।

घर का ताजा भोजन चुनें:

बाहर के अधिक नमक, तेल और प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों की अपेक्षा घर का बना भोजन बेहतर विकल्प है।

लगातार बैठे न रहें:

यदि आपका कार्य बैठकर करने का है, तो प्रत्येक 45-60 मिनट में 2-5 मिनट अवश्य टहलें। आपकी अच्छी सेहत हो, नियंत्रित रक्तचाप, स्वस्थ हृदय और स्वस्थ जीवन की मजबूत पहचान है। आपका हर दिन शुभ मंगलमय हो ऐसी कामनाएं।

श्रीमती दिव्या रावत गर्ग उण्डू 'राज'
(सुपुत्री स्व. श्री लूणाराम जी गर्ग पालीवाल सेतराया)
श्री हरि विष्णु कृपा, श्री गर्गवास राजबेरा, राजस्थान।

समर्पण

जिनको मेरे समर्पण और प्रेम में भी नाटक ही नजर आया उनसे अब किसी और जन्म में भी कभी मुलाकात न हो ,इस बात की जिम्मेदारी भी सिर्फ आपकी ही है मेरे भोले बाबा ?? एक जीवन जिया जाता है और एक जीवन काटा जाता है अंतर देखने में नजर नहीं आता वो महसूस ही किया जा सकता है

प्रेम की डगर बहुत दुष्कर है इस संसार में लेकिन स्वार्थ की डगर बहुत आसान । प्रेम की रास्ते में कांटे ही कांटे और स्वार्थ में फूल ही फूल । पूर्वजन्म के कांटों पर चलना ही होगा यही तुम्हारी असली जिंदगी है ।

आज की दुनिया में हर मुस्कुराता हुआ चेहरा अंदर से अकेला है । दोहरी जिंदगी ही तो जी रहे हैं हम क्योंकि रोता हुआ चेहरा किसी को पसंद नहीं आता लेकिन झूठी मुस्कराहट से भी लोग जलन महसूस करते हैं । जीना आसान नहीं क्योंकि जीने से ज्यादा जीने का दिखावा है हाल में जरूरी है ।

जो जितना ज्यादा ऑनलाइन वो उतना ही अकेला है दुनिया से ज्यादा आपके मन की शांति जरूरी है जो सबसे बहुमूल्य है और असंभव भी । हर दिन नया पल तैयार करने में न जाने कितनी बार मरता है वो हर इंसान जो इस दुनिया में जीने का दिखावा करता है ।

वर्षा वार्ष्णेय अलीगढ़
कवयित्री एवं लेखिका

कलम की कीमत और बाज़ार की बोली

पत्रकारिता : मिशन से बाज़ार तक की यात्रा

'जब शब्द बिकने लगते हैं तो सच सबसे पहले अनाथ होता है, और जब सच अनाथ हो जाए तो लोकतंत्र धीरे-धीरे अपनी दृष्टि खोने लगता है।' -कुमार धनंजय सुमन

एक समय था जब पत्रकार का परिचय उसके बैक खाते से नहीं, उसके विचारों से होता था। उसके पास आलीशान दफ्तर नहीं थे, वातानुकूलित स्टूडियो नहीं थे, महँगे कैमरे और करोड़ों के विज्ञापन अनुबंध नहीं थे।

उसके पास केवल एक कलम थी, कुछ कागज थे और भीतर जलती हुई एक बेचैन आत्मा थी, जो अन्याय देखकर चुप नहीं रह सकती थी। वह सत्ता के दरबारों में सम्मान पाने नहीं जाता था; वह वहाँ प्रश्न लेकर पहुँचता था। उसका कर्तव्य प्रशंसा लिखना नहीं, बल्कि जनता की ओर से जवाब माँगना था।उस दौर में पत्रकारिता रोजगार का माध्यम अवश्य थी, किंतु उसका मूल स्वभाव मिशन था। पत्रकार समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधि माना जाता था जिसके पास संपत्ति कम, परंतु नैतिक साहस अपार होता था। अभाव उसके जीवन का हिस्सा था, पर अभाव ने उसकी दृष्टि को कभी निर्धन नहीं बनाया। उसका घर साधारण हो सकता था, लेकिन उसके शब्द असाधारण होते थे। वह अपने समय की अंतरात्मा की आवाज था।स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास इस सत्य का सबसे बड़ा प्रमाण है। उस काल की पत्रकारिता सत्ता से पुरस्कार लेने के लिए नहीं, बल्कि दमन सहने के लिए तैयार रहती थी। समाचार पत्र बंद हुए, संपादक जेल गए, प्रेस जब्त हुए, आर्थिक संकट आए, किंतु कलम झुकी नहीं। उस समय पत्रकार जानता था कि उसकी सबसे बड़ी कमाई वेतन नहीं, बल्कि जनता का विश्वास है। विश्वास ऐसा धन था जिसे कोई सरकार जब्त नहीं कर सकती थी।

समय का पहिया घूमता रहा। देश स्वतंत्र हुआ। लोकतंत्र मजबूत हुआ। तकनीक विकसित हुई। संचार के साधन बढ़े। पत्रकारिता का विस्तार हुआ। यह विस्तार आवश्यक भी था, क्योंकि बदलते समाज की आवश्यकताएँ भी बदल रही थीं। किंतु इसी परिवर्तन के साथ पत्रकारिता के चरित्र में एक सूक्ष्म बदलाव भी प्रारंभ हुआ। मिशन धीरे-धीरे व्यवसाय बनने लगा और व्यवसाय से उद्योग बनने की यात्रा शुरू हो गई।

व्यवसाय होना कोई दोष नहीं है। किसी भी समाचार संस्थान को चलाने के लिए आर्थिक संसाधनों की आवश्यकता होती है। पत्रकार भी सम्मानजनक जीवन का अधिकारी है। समस्या वहाँ से प्रारंभ होती है जहाँ आर्थिक आवश्यकता संपादकीय स्वतंत्रता पर अधिकार जमाने लगती है। जब पूँजी यह तय करने लगे कि कौन-सी खबर पहले पन्ने पर जाएगी और कौन-सी दबा दी जाएगी, तब पत्रकारिता का संकट प्रारंभ होता है।

पत्रकारिता का सबसे बड़ा धर्म निष्पक्षता नहीं, बल्कि सत्यनिष्ठा है। पूर्ण निष्पक्षता मनुष्य के लिए कठिन हो सकती है, किंतु सत्य के प्रति ईमानदारी संभव है। पत्रकार का दायित्व दोनों पक्षों को सुनना, तथ्यों की जाँच करना और बिना भय तथा बिना लालच के उन्हें जनता तक पहुँचाना है। लेकिन यदि समाचार पहले से तय निष्कर्षों के अनुसार गढ़े जाने लगें, तब पत्रकार सूचना का वाहक नहीं, विचारों का व्यापारी बन जाता है।

समाज ने पत्रकार को कभी केवल खबर लिखने वाला व्यक्ति नहीं माना। उसे लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा गया। यह उपाधि किसी संविधान ने नहीं दी, बल्कि जनता के विश्वास ने दी। संसद कानून बना सकती है, न्यायालय न्याय दे सकता है, प्रशासन व्यवस्था चला सकता है, लेकिन यदि इन सबकी गतिविधियों पर जनता की निगाह न रहे तो लोकतंत्र धीरे-धीरे औपचारिकता बन जाता है। पत्रकारिता वही सार्वजनिक दृष्टि है जो सत्ता को यह स्मरण कराती रहती है कि जनता देख रही है।

आज प्रश्न यह नहीं है कि पत्रकार पहले गरीब थे और आज अमीर हो गए। प्रश्न इससे कहीं गहरा है। प्रश्न यह है कि क्या पत्रकारिता का चरित्र भी बदल गया है? क्या समृद्धि के साथ स्वतंत्रता भी बढ़ी है, या सुविधाओं के साथ निर्भरता भी आई है? क्या बड़े भवनों ने बड़े विचार भी दिए हैं? क्या आधुनिक तकनीक ने आधुनिक नैतिकता भी विकसित की है? यही वे प्रश्न हैं जिनका उत्तर खोजे बिना पत्रकारिता की वर्तमान स्थिति को समझना संभव नहीं।आज समाचार उद्योग में पूँजी का आकार इतना विशाल हो चुका है कि एक साधारण पत्रकार उसके भीतर स्वयं को कई बार अत्यंत छोटा महसूस करता है। संपादकीय निर्णयों के ऊपर प्रबंधन की परतें, विज्ञापन की अनिवार्यताएँ, निवेशकों की अपेक्षाएँ और राजनीतिक समीकरणों का दबाव कई बार उस स्वतंत्रता को सीमित कर देते हैं जो किसी पत्रकार की सबसे बड़ी शक्ति होती है। ऐसे में प्रश्न यह नहीं रह जाता कि पत्रकार क्या लिखना चाहता है; प्रश्न यह हो जाता है कि वह कितना लिख सकता है।

यह भी सत्य है कि आज भी देश के हजारों पत्रकार अत्यंत कठिन परिस्थितियों में कार्य कर रहे हैं। सीमावर्ती क्षेत्रों में, नक्सल प्रभावित इलाकों में, प्राकृतिक आपदाओं के बीच, छोटे कस्बों और गाँवों में अनेक पत्रकार न्यूनतम संसाधनों के साथ समाज की आवाज़ बने हुए हैं। उनकी आय सीमित है, सुरक्षा अपर्याप्त है और कई बार संस्थागत सहयोग भी नगण्य है। इसलिए पूरे पत्रकार समाज को एक ही रंग में रंग देना न्यायोचित नहीं होगा। पत्रकारिता का संकट व्यक्तियों का नहीं, व्यवस्था का संकट है।

दरअसल, आज पत्रकारिता दो अलग-अलग दिशाओं में खड़ी दिखाई देती है। एक दिशा वह है जहाँ खबर अब भी जनसरोकार से जन्म लेती है। दूसरी दिशा वह है जहाँ खबर बाज़ार की माँग के अनुसार तैयार की जाती है। पहली पत्रकारिता समाज को सोचने के लिए विवश करती है, दूसरी केवल उपभोग के लिए सामग्री उपलब्ध कराती है। पहली लोकतंत्र को मजबूत करती है, दूसरी मनोरंजन और प्रचार के बीच कहीं खो जाती है।

यहीं से पत्रकारिता का सबसे बड़ा द्वंद्व प्रारंभ होता है। कलम अब भी वही है, कागज भी वही है, शब्द भी वही हैं; किंतु शब्दों का स्वामी बदलने लगा है। पहले शब्द पत्रकार के विवेक से निकलते थे, अब अनेक बार वे संस्थागत रणनीतियों से होकर गुजरते हैं। पहले समाचार का केंद्र जनता होती थी, अब कई बार उपभोक्ता होती है। पहले प्रश्न यह होता था कि 'देश क्या जानना चाहता है?' अब अनेक मंचों पर प्रश्न यह बन गया है कि 'दर्शक क्या देखना चाहता है? 'यही परिवर्तन धीरे-धीरे पत्रकारिता को उसके मूल धर्म से दूर ले जाता है। क्योंकि जनता को जागरूक बनाना और दर्शक को बाँधे रखना-दोनों समान बातें नहीं हैं। जागरूकता विचार माँगती है, जबकि बाज़ार अक्सर उत्तेजना चाहता है। विचार समय लेते हैं, उत्तेजना तुरंत बिक जाती है। इसी द्वंद्व में पत्रकारिता का वर्तमान संघर्ष छिपा हुआ है।शायद इसलिए आज सबसे अधिक आवश्यकता किसी नई तकनीक की नहीं, बल्कि उस पुराने साहस की है जिसने पत्रकारिता को कभी लोकतंत्र की आत्मा बनाया था। कलम की चमक उसकी स्याही से नहीं, उसके स्वाभिमान से होती है। जिस दिन यह स्वाभिमान समाप्त हो जाता है, उसी दिन सबसे महँगी कलम भी केवल एक साधारण वस्तु बनकर रह जाती है।

यदि पत्रकारिता के इतिहास को ध्यान से पढ़ा जाए तो एक रोचक परिवर्तन दिखाई देता है। कभी समाचार समाज की आवश्यकता के अनुसार लिखे जाते थे, आज अनेक बार समाज को समाचारों की आवश्यकता नहीं, बल्कि समाचारों को समाज का ध्यान चाहिए। यह परिवर्तन मामूली नहीं है। यहीं से पत्रकारिता की दिशा बदलनी प्रारंभ होती है।

एक समय था जब किसी समाचार की महत्ता उसके सामाजिक प्रभाव से तय होती थी। आज कई मंचों पर उसकी सफलता इस बात से आँकी जाती है कि उसे कितने 'क्लिक' मिले, कितने 'व्यू' आए, कितनी देर तक दर्शक स्क्रीन पर रुका और उससे कितना विज्ञापन राजस्व प्राप्त हुआ। यह पूरी व्यवस्था समाचार को धीरे-धीरे सार्वजनिक दायित्व से हटाकर व्यावसायिक उत्पाद में बदल देती है।

बाज़ार का अपना कोई नैतिक चरित्र नहीं होता। उसका पहला सिद्धांत लाभ है। वह वहीं निवेश करता है जहाँ लाभ दिखाई देता है। यही सिद्धांत जब मीडिया उद्योग पर पूरी तरह हावी हो जाता है, तब समाचार भी उसी कसौटी पर तौले जाने लगते हैं। किसान की आत्महत्या, किसी सरकारी विद्यालय की जर्जर अवस्था, किसी गाँव की पेयजल समस्या या किसी मजदूर की त्रासदी अक्सर उतना लाभ नहीं देती जितना किसी फिल्मी विवाद, राजनीतिक बयानबाज़ी या सनसनीखेज बहस से प्राप्त होता है। परिणामस्वरूप समाज के वास्तविक प्रश्न धीरे-धीरे हाशिए पर चले जाते हैं।यहीं पत्रकारिता का सबसे बड़ा नैतिक संकट जन्म लेता है। समाचार वह नहीं रह जाता जो समाज के लिए सबसे आवश्यक है; वह वह बन जाता है जो सबसे अधिक बिकाऊ है। लोकतंत्र में यह परिवर्तन अत्यंत गंभीर है, क्योंकि जनता वही देखती और सोचती है जो उसके सामने बार-बार प्रस्तुत किया जाता है।

कॉरपोरेट स्वामित्व ने पत्रकारिता को आधुनिक संसाधन दिए, तकनीकी क्षमता दी और व्यापक पहुँच भी प्रदान की। यह उसके सकारात्मक पक्ष हैं। किंतु जब किसी मीडिया संस्थान का स्वामित्व ऐसे उद्योग समूहों के हाथ में हो जिनके अपने व्यावसायिक हित हों, तब संपादकीय स्वतंत्रता के सामने स्वाभाविक प्रश्न खड़े होते हैं। कोई भी संस्था खुलकर यह स्वीकार नहीं करती कि उसकी खबरें प्रभावित हैं, परंतु मौन भी कभी-कभी शब्दों से अधिक मुखर होता है। जो समाचार लगातार अनुपस्थित रहते हैं, वे भी उतनी ही कहानी कहते हैं जितनी प्रकाशित खबरें।

पत्रकारिता का एक नया चेहरा 'टीआरपी संस्कृति' के रूप में सामने आया। समाचार चैनलों के बीच प्रतिस्पर्धा बढ़ी। बहसों का स्वर ऊँचा होता गया। तर्कों की जगह शोर ने ले ली। एंकर कई बार संवाद के संचालक कम और निर्णय सुनाने वाले अधिक दिखाई देने लगे। ऐसा वातावरण दर्शकों को कुछ समय तक आकर्षित अवश्य करता है, किंतु लोकतांत्रिक विमर्श को कमजोर भी करता है। लोकतंत्र बहस से चलता है, कोलाहल से नहीं।कभी समाचार पढ़े जाते थे, फिर देखे जाने लगे, और अब उन्हें 'उपभोग' किया जाने लगा है। यह शब्द परिवर्तन नहीं, सोच का परिवर्तन है। उपभोक्ता को बाँधे रखने के लिए निरंतर उत्तेजना आवश्यक होती है। इसलिए अनेक बार साधारण घटनाओं को असाधारण बनाकर प्रस्तुत किया जाता है। शीर्षक इतने तीखे बनाए जाते हैं कि पाठक भीतर जाने से पहले ही निष्कर्ष बना ले। शब्दों की यह आक्रामकता धीरे-धीरे सामाजिक संवाद को भी प्रभावित करती है।डिजिटल मीडिया ने पत्रकारिता का लोकतंत्रीकरण भी किया है और उसके सामने अभूतपूर्व चुनौतियाँ भी खड़ी की हैं। अब सूचना केवल मीडिया संस्थानों के पास नहीं है। प्रत्येक नागरिक अपने मोबाइल से वीडियो बना सकता है, टिप्पणी लिख सकता है और लाखों लोगों तक पहुँच सकता है। यह लोकतांत्रिक विस्तार स्वागत योग्य है, किंतु इसके साथ सत्यापन का संकट भी जुड़ा हुआ है। सूचना की गति इतनी तीव्र हो चुकी है कि कई बार तथ्य उसके पीछे छूट जाते हैं। अफवाह और समाचार के बीच की दूरी कुछ सेकंड की रह गई है।

सोशल मीडिया ने एक नई मानसिकता भी विकसित की है- तत्काल प्रतिक्रिया की मानसिकता। पहले समाचार पढ़कर लोग सोचते थे, अब पहले प्रतिक्रिया देते हैं और बाद में तथ्य खोजते हैं। इस जल्दबाज़ी ने सार्वजनिक विमर्श की गंभीरता को प्रभावित किया है। पत्रकारिता का कार्य भी कठिन हो गया है, क्योंकि उसे सत्य के साथ-साथ असत्य की बाढ़ से भी संघर्ष करना पड़ रहा है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने पत्रकारिता के सामने एक नया युग खोल दिया है। आज मशीनें समाचार लिख सकती हैं, अनुवाद कर सकती हैं, वीडियो बना सकती हैं और चित्र भी तैयार कर सकती हैं। लेकिन मशीन तथ्य का अर्थ नहीं समझती, वह केवल डेटा का विश्लेषण करती है। किसी किसान की आँखों का दर्द, किसी शहीद की माँ की चुप्पी, किसी बाढ़ पीड़ित बच्चे की मौन दृष्टि या किसी न्याय की प्रतीक्षा करते नागरिक की पीड़ा-इनका अनुभव किसी एल्गोरिद्म के पास नहीं हो सकता। पत्रकारिता की आत्मा अभी भी मनुष्य के भीतर ही बसती है।

एक और चिंता का विषय है- फील्ड रिपोर्टिंग का लगातार सिकुड़ना। पहले पत्रकार धूल भरी पगडंडियों पर चलता था, अदालत की सीढ़ियाँ चढ़ता था, अस्पतालों के बरामदों में घंटों खड़ा रहता था, बाढ़ के पानी में उतरता था और तब जाकर समाचार लिखता था। आज कई समाचार न्यूज़रूम की स्क्रीन पर बैठकर तैयार हो जाते हैं। प्रत्यक्ष अनुभव की कमी से समाचारों की गहराई भी प्रभावित होती है। घटनाएँ दिखाई देती हैं, पर उनके पीछे छिपे कारण नहीं।

ग्रामीण पत्रकारिता का संकट विशेष चिंता का विषय है। भारत का बड़ा हिस्सा गाँवों में बसता है, लेकिन राष्ट्रीय विमर्श में महानगरों की उपस्थिति अधिक दिखाई देती है। किसी महानगर का ट्रैफिक जाम कई बार राष्ट्रीय समाचार बन जाता है, जबकि किसी सुदूर गाँव का सूखा, स्कूल की बदहाली या स्वास्थ्य केंद्र का अभाव स्थानीय खबर बनकर रह जाता है। यह असंतुलन केवल मीडिया का नहीं, विकास की दृष्टि का भी प्रश्न है।

भाषा का बदलता स्वरूप भी विचारणीय है। समाचार की भाषा कभी संयम, शालीनता और सटीकता का उदाहरण मानी जाती थी। आज अनेक मंचों पर शब्दों का चयन इस प्रकार किया जाता है कि भावनाएँ तुरंत भड़कें। क्रोध बिकता है, भय बिकता है, सनसनी बिकती है; लेकिन विवेक को बाज़ार में खरीदार कम मिलते हैं। परिणाम यह होता है कि समाज में संवाद कम और ध्रुवीकरण अधिक दिखाई देने लगता है।फिर भी आशा पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। डिजिटल माध्यमों ने अनेक स्वतंत्र पत्रकारों को भी जन्म दिया है। छोटे-छोटे प्लेटफॉर्म सीमित संसाधनों में उत्कृष्ट खोजी पत्रकारिता कर रहे हैं। अनेक युवा पत्रकार किसी बड़े कॉरपोरेट संस्थान का हिस्सा बने बिना भी जनसरोकार के मुद्दों को सामने ला रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि संकट पत्रकारिता की आत्मा का नहीं, उसके परिवेश का है।आज आवश्यकता इस बात की है कि मीडिया स्वयं से यह प्रश्न पूछे-क्या वह जनता की चेतना का विस्तार कर रहा है या केवल उसकी जिज्ञासा का व्यापार? क्योंकि दोनों में बहुत बड़ा अंतर है। जिज्ञासा क्षणिक होती है, चेतना स्थायी। बाज़ार क्षणिक सफलता दे सकता है, किंतु इतिहास केवल उसी पत्रकारिता को याद रखता है जिसने अपने समय के सत्य को बचाने का साहस किया।

इसी साहस की परीक्षा आज फिर सामने है। तकनीक बदल चुकी है, माध्यम बदल चुके हैं, दर्शक बदल चुके हैं; लेकिन पत्रकारिता का मूल प्रश्न आज भी वही है-क्या कलम सत्ता और संपत्ति के बीच भी नागरिक के पक्ष में खड़ी रह सकेगी? इसी प्रश्न का उत्तर आने वाले समय की पत्रकारिता का चरित्र तय करेगा।

इतिहास का एक अद्भुत सत्य है-सभ्यताएँ तलवार से कम और विचारों के पतन से अधिक पराजित होती हैं। जब समाज प्रश्न पूछना छोड़ देता है, तब अत्याचार बिना शोर के सामान्य जीवन का हिस्सा बन जाता है। और जब प्रश्न पूछने वाली कलम मौन हो जाती है, तब लोकतंत्र का सबसे बड़ा प्रहरी स्वयं अपने कर्तव्य से विमुख हो जाता है। इसलिए पत्रकारिता का भविष्य केवल मीडिया उद्योग का प्रश्न नहीं, बल्कि राष्ट्र की बौद्धिक चेतना का प्रश्न है।

आज आवश्यकता किसी कृत्रिम क्रांति की नहीं, बल्कि नैतिक पुनर्जागरण की है। पत्रकारिता को फिर से यह स्मरण करना होगा कि उसका पहला अनुबंध किसी सरकार, किसी उद्योग समूह, किसी राजनीतिक दल या किसी विज्ञापनदाता से नहीं, बल्कि जनता से है। जनता ही उसकी वास्तविक स्वामी है। वही पाठक है, वही दर्शक है और वही इतिहास की अंतिम निर्णायक भी।

पत्रकारिता की सबसे बड़ी शक्ति उसकी विश्वसनीयता है। यदि समाचार पर से विश्वास उठ जाए तो सबसे आधुनिक स्टूडियो, सबसे महंगे कैमरे और सबसे तेज़ इंटरनेट भी उस विश्वास की भरपाई नहीं कर सकते। समाचार संस्था की इमारत सीमेंट और लोहे से बनती है, लेकिन उसकी प्रतिष्ठा सत्य, साहस और निरंतर ईमानदारी से निर्मित होती है। यह प्रतिष्ठा वर्षों में अर्जित होती है और क्षण भर में नष्ट भी हो सकती है।

युवा पत्रकारों के सामने आज जितनी चुनौतियाँ हैं, उतने ही अवसर भी हैं। उन्हें यह तय करना होगा कि वे भीड़ के पीछे चलने वाले संवाददाता बनेंगे या समाज को नई दिशा देने वाले पत्रकार। पत्रकारिता में लोकप्रिय होना सरल है, किंतु विश्वसनीय होना कठिन। लोकप्रियता समय के साथ बदल जाती है, विश्वसनीयता पीढ़ियों तक जीवित रहती है।

पत्रकारिता और साहित्य का संबंध भी यहाँ विशेष रूप से स्मरणीय है। दोनों का उद्देश्य शब्दों से समाज का निर्माण करना है। अंतर केवल इतना है कि साहित्य समय के सत्य को शाश्वत रूप देता है, जबकि पत्रकारिता शाश्वत मूल्यों के आलोक में अपने समय के सत्य को दर्ज करती है। इसलिए जब पत्रकारिता साहित्यिक संवेदना से जुड़ती है, तब समाचार केवल सूचना नहीं रहता, वह समाज के अंतर्मन का दस्तावेज़ बन जाता है।

पत्रकार को केवल घटनाओं का लेखक नहीं होना चाहिए, बल्कि समय का साक्षी भी होना चाहिए। वह केवल यह न लिखे कि क्या हुआ, बल्कि यह भी समझे कि क्यों हुआ और उसके दूरगामी परिणाम क्या होंगे। यही विश्लेषण पत्रकारिता को इतिहास का प्रथम प्रारूप बनाता है।आज एक और खतरा दिखाई देता है-वैचारिक असहिष्णुता का। समाज धीरे-धीरे ऐसे समूहों में विभाजित होता जा रहा है जो केवल वही सुनना चाहते हैं जो उनकी मान्यताओं के अनुकूल हो। पत्रकार यदि केवल किसी एक विचारधारा का प्रवक्ता बन जाए तो वह समाज के दूसरे हिस्से का विश्वास खो देता है। पत्रकारिता का धर्म पक्ष चुनना नहीं, बल्कि तथ्य प्रस्तुत करना और सत्ता सहित हर प्रभावशाली शक्ति से समान कठोरता के साथ प्रश्न करना है।लोकतंत्र में प्रेस की स्वतंत्रता कोई विशेषाधिकार नहीं, बल्कि नागरिकों का अधिकार है। स्वतंत्र पत्रकारिता इसलिए आवश्यक नहीं कि पत्रकार स्वतंत्र रहें, बल्कि इसलिए कि जनता सच जान सके। जहाँ सूचना नियंत्रित होती है, वहाँ निर्णय भी नियंत्रित होने लगते हैं। इसलिए समाचार की स्वतंत्रता अंततः नागरिक की स्वतंत्रता है।समाज को भी आत्ममंथन करना होगा। यदि पाठक बिना सत्यापन के संदेश साझा करेगा, यदि वह अफवाह को समाचार और प्रचार को तथ्य मान लेगा, तो पत्रकारिता की जिम्मेदारी अकेले पर्याप्त नहीं होगी। लोकतंत्र केवल अच्छे पत्रकारों से नहीं चलता, जागरूक नागरिकों से भी चलता है। सच की रक्षा केवल न्यूज़रूम में नहीं, समाज के प्रत्येक घर में होती है।

शिक्षण संस्थानों को भी पत्रकारिता की शिक्षा केवल तकनीक तक सीमित नहीं रखनी चाहिए। कैमरा चलाना, संपादन करना और डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म का उपयोग सीखना आवश्यक है, किंतु उससे भी अधिक आवश्यक है संविधान की समझ, इतिहास का अध्ययन, साहित्य का संस्कार और नैतिक विवेक। क्योंकि तकनीक पत्रकार बना सकती है, किंतु चरित्र नहीं।

पत्रकारिता का भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि वह कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में भी मानवीय संवेदना को कितना बचा पाती है। मशीन सूचना का संकलन कर सकती है, लेकिन अन्याय देखकर व्यथित नहीं हो सकती। वह आँकड़े गिना सकती है, पर आँसू नहीं पढ़ सकती। इसलिए भविष्य का सबसे सफल पत्रकार वही होगा जो तकनीक का उपयोग तो करेगा, लेकिन अपने विवेक का समर्पण नहीं करेगा।

कभी-कभी यह प्रश्न भी उठता है कि क्या पत्रकारिता अपना स्वर्णिम काल फिर से प्राप्त कर सकती है? इतिहास का उत्तर है-हाँ। क्योंकि प्रत्येक युग में कुछ ऐसी कलमें जन्म लेती हैं जो समय के प्रवाह के विरुद्ध तैरने का साहस रखती हैं। वे संख्या में कम होती हैं, लेकिन प्रभाव में विशाल होती हैं। वे सिद्ध करती हैं कि सत्य का मूल्य बाजार तय नहीं करता, इतिहास करता है।

पत्रकारिता का पुनर्जागरण किसी सरकारी योजना से नहीं होगा, न किसी पुरस्कार से और न ही किसी नई तकनीक से। उसका पुनर्जन्म तब होगा जब समाचार कक्षों में बैठा प्रत्येक पत्रकार स्वयं से प्रतिदिन तीन प्रश्न पूछे-

क्या मेरी खबर सबसे पहले जनता के हित में है?क्या मैंने तथ्य के साथ न्याय किया है?यदि मेरा नाम हटाकर यह समाचार इतिहास के सामने रखा जाए, तो क्या मुझे उस पर गर्व होगा?यदि इन तीन प्रश्नों के उत्तर ईमानदारी से दिए जाएँ, तो पत्रकारिता का आधा संकट उसी क्षण समाप्त हो जाएगा।

पत्रकारिता की असली लड़ाई गरीबी और अमीरी के बीच नहीं है। पत्रकार का समृद्ध होना स्वागतयोग्य है, यदि उसकी समृद्धि उसकी प्रतिभा, परिश्रम और ईमानदारी से अर्जित हुई हो। वास्तविक संकट तब पैदा होता है जब कलम की स्वतंत्रता गिरवी रखकर वैभव अर्जित किया जाए। क्योंकि जिस दिन पत्रकार अपने स्वाभिमान की कीमत स्वीकार कर लेता है, उसी दिन उसका सबसे बड़ा दिवालियापन प्रारंभ हो जाता है।

पत्रकारिता का भविष्य किसी उद्योगपति की तिजोरी में नहीं, किसी सरकार की शक्ति में नहीं और किसी डिजिटल मंच के एल्गोरिद्म में भी नहीं छिपा है। उसका भविष्य उस साधारण-से पत्रकार के भीतर जीवित है, जो अब भी किसी दूरस्थ गाँव में टूटी सड़क, सूखे खेत, बंद स्कूल, भ्रष्ट व्यवस्था या पीड़ित नागरिक की आवाज़ सुनकर अपनी डायरी खोलता है और लिखता है- 'यह खबर है, क्योंकि यह मनुष्य का जीवन है। 'यही पत्रकारिता का शाश्वत धर्म है। यही उसकी तपस्या है। यही उसका स्वाभिमान है।और जिस दिन कलम फिर से सत्ता के सिंहासन के बजाय समाज के अंतःकरण के सामने नतमस्तक होगी, उसी दिन पत्रकारिता केवल उद्योग नहीं रहेगी-वह फिर से लोकधर्म बन जाएगी। वही दिन लोकतंत्र का भी सबसे उज्ज्वल प्रभात होगा।

कुमार धनंजय सुमन
सोनवर्षा,थाना-
बिहपुर,भागलपुर,बिहार
853201